आचार्य श्री की काव्य-साधना

□ डॉ० नरेन्द्र भानावत

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. भारतीय सन्त-परम्परा के विशिष्ट ज्ञानी, ध्यानी साधक, उत्कृष्ट क्रियाराधक और "जिनवाणी" के महान् उपासक, संवेदनशील साहित्यकार थे। आपको धार्मिक, आध्यात्मिक संस्कार विरासत में मिले। जब आप गर्भ में थे, तभी प्लेग की चपेट में आ जाने से आपके पिता चल बसे। माँ ने बड़े धैर्य और शांतिपूर्वक धर्माराधना करते हुए आपका लालन-पालन किया। सात वर्ष बाद प्लेग का पुनः प्रकोप हुआ, जिसमें आपके नाना और उनके परिवार के सात सदस्य एक-एक कर चल बसे। जिस परिस्थिति में आपका जन्म और बचपन बीता, वह प्लेग जैसी महामारी और भयंकर दुर्भिक्ष से ग्रस्त थी। लोग अत्यन्त दुःखी, अभाव ग्रस्त और असहाय थे। समाज बाल-विवाह, मृत्यु-भोज, पर्दा-प्रथा, अंधविश्वास आदि कुरीतियों और मिथ्या मान्यताओं से जकड़ा हुआ था। जात-पांत, छुआछूत और ऊँच-नीच के विभिन्न स्तरों में समाज विभक्त था। नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ब्रिटिश शासन, देशी रियासती नरेश और जमींदार ठाकुरों की तिहरी गुलामी से जनता त्रस्त थी। बालक हस्ती के अचेतन मन पर इन सबका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इन कठिन परिस्थितियों का बड़े धैर्य और साहस के साथ मुकाबला करते हुए बालक हस्ती ने अपने व्यक्तित्व का जो निर्माण किया, वह एक ओर करुणा, दया, प्रेम और त्याग से आर्द्र था, तो दूसरी ओर शौर्य, शक्ति, बल और पराक्रम से पूरित था।

साधु-सन्तों के संपर्क से और माँ के धार्मिक संस्कारों से बालक हस्ती पर वैराग्य का रंग चढ़ा और अपनी माँ के साथ ही ऐसे सन्त मार्ग पर वह बढ़ चला मात्र 10 वर्ष की अवस्था में, जहाँ न कोई महामारी हो, न कोई दुर्भिक्ष। आचार्य शोभाचन्दजी म. के चरणों में दीक्षित बाल-साधक सन्त हस्ती को ज्ञान, क्रिया और भक्ति के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति करने का समुचित अवसर मिला। साधना के साथ स्वाध्याय और स्वाध्याय के साथ साहित्य-सृजन की प्रेरणा विरासत में मिली।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. जैन धर्म की जिस स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित थे, उसके मूल पुरुष आचार्य कुशलोजी हैं। कुशलोजी के गुरु भ्राता आचार्य जयमलजी उच्चकोटि के कवि थे। कुशलोजी के शिष्य आचार्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गुमानचन्दजी म. सुतीक्ष्ण प्रज्ञावान संत थे। उनके शिष्य आचार्य रतनचन्दजी म. महान् क्रिया उद्धारक, धीर, गंभीर, परम तेजस्वी सन्त थे। इनके नाम से ही रत्नचन्द्र सम्प्रदाय चला है। आचार्य रतनचन्दजी म. उत्कृष्ट संयम-साधक होने के साथ-साथ महान् कवि थे। इनके शिष्य आचार्य हमीरमलजी म. हुए, जो परम गुरु-भक्त, विनय मूर्ति और तेजस्वी थे। इनके शिष्य आचार्य कजोड़ीमलजी म. कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। इनके शिष्य आचार्य विनयचन्द्रजी म. हुए, जो ज्ञान-क्रिया सम्पन्न विशिष्ट कवि थे। इनकी कई रचनाएँ आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार में हस्तलिखित कृतियों में सुरक्षित हैं। इनके शिष्य आचार्य शोभाचन्द्रजी म. सेवाव्रती, सरल स्वभावी और क्षमाशील संत थे। इन्हीं के चरणों में श्री हस्तीमलजी म. सा. ने जैन भागवती दीक्षा अंगीकृत की।

उपर्युक्त उल्लेख से यह स्पष्ट है कि आचार्य श्री जिस जैन सम्प्रदाय से जुड़े, उसमें साधना के साथ-साथ साहित्य-सृजन की परम्परा रही। आचार्य विनयचन्द्रजी म. के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में श्री दुर्गादासजी म., कनीरामजी म., किशनलालजी म., सुजानमलजी म. जैसे सन्त कवि और महासती जड़ाव जी, भूरसुन्दरीजी जैसी कवयित्रियाँ भी हुई हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने उत्कृष्ट संयम-साधना के साथ-साथ साहित्य-निर्माण एवं काव्य-सर्जना को समृद्ध और पुष्ट कर रत्न सम्प्रदाय के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए उसमें वृद्धि की।

आचार्य श्री हस्ती बहुआयामी प्रतिभा के धनी, आगमनिष्ठ चिन्तक साहित्यकार थे। आपने समाज में श्रुतज्ञान के प्रति विशेष जागृति पैदा की और इस बात पर बल दिया कि रूढ़ि रूप में की गई क्रिया विशेष फलवती नहीं होती। क्रिया को जब ज्ञान की आँख मिलती है, तभी वह तेजस्वी बनती है। स्वाध्याय संघों की संगठना और ज्ञान-भण्डारों की स्थापना की प्रेरणा देकर आपने एक ओर ज्ञान के प्रति जन-जागरण की अलख जगाई है तो दूसरी ओर स्वयं साहित्य-साधना में रत रहकर साहित्य-सर्जना द्वारा माँ भारती के भण्डार को समृद्ध करने में अपना विशिष्ट ऐतिहासिक योगदान दिया।

आपकी साहित्य-साधना बहुमुखी है। इसके चार मुख्य आयाम हैं :— १. आगमिक व्याख्या साहित्य, २. जैन धर्म सम्बन्धी इतिहास साहित्य, ३. प्रवचन साहित्य और ४. काव्य-साहित्य। यहाँ हम काव्य साहित्य पर ही चर्चा करेंगे।

आचार्य श्री प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषाओं के प्रखर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्वान् होने के साथ-साथ आगम, न्याय, धर्म, दर्शन, व्याकरण, साहित्य, इतिहास आदि विषयों के व्यापक अध्येता और गूढ़ गम्भीर चिन्तक रहे हैं। इसी गूढ़, गम्भीर ज्ञान, मनन और चिन्तन की संवेदना के धरातल से आपने काव्य-रचना की है, पर आपका काव्य कहीं भी शास्त्रीयता से बोझिल नहीं हुआ है। वह सरल, सुबोध और स्पष्ट है। लगता है आपने अपने पांडित्य-प्रदर्शन के लिए नहीं, वरन् आगमों में निहित जीवन-मूल्यों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए तथा जैन सांस्कृतिक व ऐतिहासिक परम्पराओं से उसे अवगत कराने के उद्देश्य से ही काव्य विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आपके काव्य में लोक-मंगल, आत्म-जागरण और नैतिक उन्नयन की भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है।

आचार्य श्री के काव्य को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—१. स्तुति काव्य, २. उपदेश काव्य, ३. चरित काव्य और ४. पद्यानुवाद।

१. **स्तुति काव्य**—आचार्य श्री भाषा, साहित्य, आगम व तत्त्वज्ञान के प्रखर पण्डित होकर भी और आचार्य जैसे महनीय प्रभावी पद को धारण करते हुए भी जीवन में अत्यन्त सरल, विनयशील और स्नेहपूरित रहे हैं। ज्ञान और भक्ति का, शक्ति और स्नेह का, श्रुत-सेवा और समर्पण भाव का आप जैसा समन्वित व्यक्तित्व कम देखने में आता है। स्तुति में भक्त अपने आराध्य के प्रति निश्छल भाव से अपने को समर्पित करता है। आचार्य श्री का आराध्य वीतराग प्रभु है, जिसने राग-द्वेष को जीत लिया है। भगवान् ऋषभदेव, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए उनके गुणों के प्रति कवि ने अपने आपको समर्पित किया है। भगवान् शांतिनाथ की प्रार्थना करते हुए कवि ने केवल अपने लिए नहीं, सबके लिए शांति की कामना की है—

> "भीतर शांति, बाहिर शांति, तुझमें शांति, मुझमें शांति।
> सबमें शांति बसाओ, सब मिलकर शांति कहो ।।१।।"

भगवान् महावीर की वन्दना करते हुए कबि की यही चाह है कि वह ज्योतिर्धर, वीर जिनेश्वर का नाम सदा रटता रहे और दुर्मति से सुमति में उसका निवास हो—

> "जिनराज चरण का चेरा, मांगू मैं सुमति-बसेरा।
> ओ 'हस्ती' नित वन्दन करना, वीर जिनेश्वर को ।।२।।"

आचार्य श्री की अपने गुरु के प्रति अनन्त श्रद्धाभक्ति है। गुरु ही शिष्य को पत्थर से प्रतिभावान बनाता है—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"गुरु कारीगर के सम जगमें, वचन जो खावेला ।
पत्थर से प्रतिमा सम वो नर, महिमा पावेला ।
घणो सुख पावेला, जो गुरु-वचनों पर, प्रीत बढ़ावेला ।।"

कवि की दृष्टि में सच्चा गुरु वह है, जिसने जगत् से नाता तोड़कर परमात्मा से शुभ ध्यान लगा लिया है, जो क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों का त्यागी है, जो क्षमा-रस से ओतप्रोत है। ऐसे गुरु की सेवा करना ही अपने कर्म-बंधनों को काटना है। गुरु के समान और कोई उपकारी नहीं और कोई आधार नहीं—

"उपकारी सद्गुरु दूजा, नहीं कोई संसार ।
मोह भंवर में पड़े हुए को, यही बड़ा आधार ।।"

गुरु से कवि भक्त-भगवान् सा सम्बन्ध जोड़ता है। कबीर ने गुरु को गोविन्द से भी बड़ा बताया है, क्योंकि गुरु ही वह माध्यम है, जिससे गोविन्द की पहचान होती है। गुरु से विनय करता हुआ कवि अपने लिए आत्म-शांति और आत्मबल की मांग करता है—

"श्री गुरुवर महाराज हमें यह वर दो ।
रग-रग में मेरे एक शांति रस भर दो ।।"
मैं हूँ अनाथ भव दुःख से पूरा दुःखिया,
प्रभु करुणा सागर तू तारक का मुखिया ।
कर महर नजर अब दीननाथ तव कर दो ।।
ये काम क्रोध मद मोह शत्रु हैं घेरे,
लूटत ज्ञानादिक संपद को मुझ डेरे ।
अब तुम बिन पालक कौन हमें बल दो ।।

स्तुति काव्य में जहाँ कवि ने सत्गुरु के सामान्य गुणों की स्तवना की है, वहीं अपनी परम्परा में जो पूर्वाचार्य हुए हैं, उनके प्रति श्रद्धाभक्ति व विनयभाव प्रकट किया है। आचार्य भूधरजी, आचार्य कुशलोजी, आचार्य रतनचन्द्रजी और आचार्य शोभाचन्द्रजी के महनीय, वंदनीय व्यक्तित्व का गुणानुवाद करते हुए जहाँ एक ओर कवि ने उनके चरित्र की विशेषताओं एवं प्रेरक घटनाओं का उल्लेख किया है, वहीं यह कामना की है कि उनके गुण अपने जीवन में चरितार्थ हों। गुरु के जप/नामस्मरण को भी कवि ने महत्त्व दिया है—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१. श्री कुशल पूज्य का कीजे जाप, मिट जावे सब शोक संताप ।

२. जय बोलो रत्न मुनिश्वर की, धन कुशल वंश के पट्टधर की ।

३. सुमरो शोभाचन्द मुनीन्द्र, भो जिन धर्म दीपाने वाले ।

२. **उपदेश काव्य**—जैन संतों का मुख्य लक्ष्य आत्म-कल्याण के साथ-साथ लोक-कल्याण की प्रेरणा देना है। व्यक्ति का जीवन शुद्ध, सात्विक, प्रामाणिक और नैतिक बने तथा समाज में समता, भाईचारा, शांति एवं परस्पर सहयोग-सहिष्णुता कीं वृद्धि हो, इस उद्देश्य से जैन संत ग्रामानुग्राम पद-विहार करते हुए लोक हितार्थ उपदेश/प्रवचन देते हैं। उनका उपदेश शास्त्रीय ज्ञान एवं लोक-अनुभव से संपृक्त रहता है। अपने उपदेश को जनता के हृदय तक संप्रेषित करने के लिए वे उसे सहज-सरल और सरस बनाकर प्रस्तुत करते हैं। यही नहीं शास्त्रीय ज्ञान को भावप्रवण और हृदय-संवेद्य बनाने के लिए वे काव्य और संगीत का सहारा लेते हैं। इसी उद्देश्य से जैन संत-काव्य की सृष्टि अविच्छिन्न रूप से आज तक होती चली आ रही है। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के उपदेशात्मक काव्य की भी यही भावभूमि है।

आचार्य श्री के उपदेश-काव्य के तीन पक्ष हैं—१. आत्म-बोध, २. समाज-बोध और ३. पर्व-बोध। ये बोधत्रय आध्यात्मिकता से जुड़े हुए हैं। आचार्य श्री सुषुप्त आत्म-शक्ति को जागृत करने के लिए सतत साधना और साहित्य सृजनरत रहे। मानव-जीवन की दुर्लभता को दृष्टि में रखकर आपने बार-बार आत्म-स्वरूप को समझने और पहचानने की जनमानस को प्रेरणा दी है—

समझो चेतन जीव अपना रूप, यो अवसर मत हारो,
ज्ञान दरसमय रूप तिहारो, अस्थि मांसमय देह न थारो ।
दूर करो अज्ञान, होवे घट उजियारो ।।

आचार्य श्री ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण पर बल देते हुए कहा है कि शरीर और आत्मा भिन्न हैं। शरीर के विभिन्न अंग और आँख, नाक, कान, जीभ आदि दिखाई देने वाली इन्द्रियाँ क्षणिक हैं, नश्वर हैं। पर इन्हें संचालित करने वाला जो शक्ति तत्त्व है, वह अजर-अमर है—

हाथ, पैर नहीं, सिर भी न तुम हो, गर्दन, भुजा, उदर नहीं तुम हो ।
नेत्रादिक इन्द्रिय नहीं तुम हो, पर सबके संचालक तुम हो ।
पृथ्वी, जल, अग्नि, नहीं तुम हो, गगन, अनिल में भी नहीं तुम हो ।
मन, वाणी, बुद्धि नहीं तुम हो, पर सबके संयोजक तुम हो ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जब बहिरात्मा अन्तर्मुख होती है, तब सुरूप-कुरूप, काले-गोरे, लम्बे-बौने आदि का भाव नहीं रहता। इन्द्रिय आधारित सुख-दुःख से चेतना ऊपर उठ जाती है। तब न किसी प्रकार का रोग रहता है, न शोक। राग-द्वेष से ऊपर उठने पर जो अनुभव होता है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव है। अनुभूति के इसी क्षण में आचार्य हस्ती का कवि हृदय गा उठता है—

मैं हूँ उस नगरी का भूप, जहाँ नहीं होती छाया-धूप।
तारा मण्डल की न गति है, जहाँ न पहुँचे सूर।
जगमग ज्योति सदा जगती है, दीसे यह जग कूप।
श्रद्धा नगरी बास हमारा, चिन्मय कोष अनूप।
निराबाध सुख में झूलूँ मैं, सद्‌चित्त आनन्द रूप।
मैं न किसी से दबने वाला, रोग न मेरा रूप।
'गजेन्द्र' निजपद को पहचाने, सो भूपों का भूप।

इस स्थिति में आत्मा अनन्त प्रकाश से भर जाती है। कोई आशा-इच्छा मन में नहीं रहती। शरीर और आत्मा के भेद-ज्ञान से भव-प्रपंच का पाश कट जाता है। कवि परम चेतना का स्पर्श पा, गा उठता है—

मेरे अन्तर भयाप्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आस।
रोग शोक नहीं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास।
सदा शांतिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास।
मोह मिथ्यात्व की गाँठ गले तब, होवे ज्ञान प्रकाश।
'गजेन्द्र' देखे अलख रूप को, फिर न किसी की आस।।

यह आत्मबोध अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म की आराधना करने से संभव हो पाता है।

आत्म-बोध के साथ-साथ समाज-बोध के प्रति भी आचार्य श्री का कवि हृदय सजग रहा है। आचार्य श्री व्यक्ति की व्रतनिष्ठा और नैतिक प्रतिबद्धता को स्वस्थ समाज रचना के लिए आवश्यक मानते हैं। इसी दृष्टि से "जागो-जागो हे आत्म बन्धु" कहकर वे जागृति का संदेश देते हैं। आचार्य श्री जागृत समाज का लक्षण भौतिक वैभव या धन-सम्पदा की अखूट प्राप्ति को नहीं मानते। आपकी दृष्टि में जागृत समाज वह समाज है, जिसमें स्वाध्याय अर्थात् सद्‌शास्त्रों के अध्ययन के प्रति रुचि और सम्यक्‌ज्ञान के प्रति जागरूकता हो। अपने "स्वाध्याय संदेश" में आपने कहा है—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर लो श्रुतवाणी का पाठ, भविक जन, मन-मल हरने को।
बिन स्वाध्याय ज्ञान नहिं होगा, ज्योति जगाने को।
राग-रोष की गाँठ गले नहीं, बोधि मिलाने को।।

आचार्य श्री बार-बार कहते हैं "स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो" क्योंकि "स्वाध्याय बिना घर सूना है, मन सूना है सद्ज्ञान बिना।"

आचार्य श्री का आह्वान है कि यदि दुःख मिटाना है तो अज्ञान के अंधकार को दूर करो और वह स्वाध्याय से ही संभव है।

जीवन का और समाज का भी मुख्य लक्ष्य सुख व शांति है और यह बिना समता भाव के संभव नहीं। समता की प्राप्ति के लिए आचार्य श्री ने सामायिक पर बल दिया है। आपकी प्रेरणा पंक्ति है—"जीवन उन्नत करना चाहो तो सामायिक साधन कर लो।" सामायिक की साधना समता रस का पान है। इससे विषमता मिटती है और जीवन-व्यवहार में समता आती है।

आचार्य श्री सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के पक्षपाती हैं। आप व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को अंग-अंगी के रूप में देखते हैं—

"विभिन्न व्यक्ति अंग समझ लो, तन-समाज सुखदायी।
"गजुमुनि" सबके हित सब दौड़ें, दुःख दरिद्र नस जाहिं।।"

आदर्श समाज-रचना के लिए आचार्य श्री विनय, मैत्री, सेवा, परोपकार, शील, सहनशीलता, अनुशासन आदि जीवन मूल्यों को आवश्यक मानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति ईमानदारी और विवेकपूर्वक देवभक्ति, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान रूप षटकर्म की साधना करे, तो वह न केवल अपने जीवन को उच्च बना सकता है वरन् आदर्श समाज का निर्माण भी कर सकता है।

आचार्य श्री समाज उत्थान के लिए नारी शिक्षण को विशेष महत्त्व देते हैं। आप नारी जाति को प्रेरणा देते हैं कि वह सांसारिक राग-रंग और देह के बनाव-शृंगार में न उलझे वरन् शील और संयम से अपने तन को सजाये—

१. शील और संयम की महिमा, तुम तन शोभे हो।
सोना चांदी हीरक से, नहिं खान पूजाई हो।।

२. सदाचार सादापन धारो, ज्ञान, ध्यान से तप सिणगारो।
पर उपकार ही भूषण, खास समझो मर्म को जी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री मूलतः आध्यात्मिक संवेदना के कवि हैं। सामाजिक अनुष्ठानों, पर्व-तिथियों, उत्सव-मेलों आदि को भी आपने आध्यात्मिक रंग दिया है।

रक्षा बन्धन को आचार्य श्री ने जीव मात्र के प्रति रक्षा का प्रेरक त्यौहार बताया है—"बांधो-बांधो रे, जतना के सूत्र से, रक्षा होवेला।" दीपावली, भगवान् महावीर का निर्वाण दिवस प्रज्ञा और प्रकाश का पर्व है। यह संदेश देता है कि हम अंधकार से प्रकाश में जावें। आचार्य श्री ने दीपक की तरह साधनारत रहने की प्रेरणा दी है—

"दीपक ज्यों जीवन जलता है, मूल्यवान भाया रे जगत् में।
सत्पुरुषों का जीवन परहित, जलता शोभाया रे जगत् में॥"

होली विकार-विगलन का पर्व है—

"ज्ञान-ध्यान की ज्योति जगा, दुष्कर्म जलाओ रे,
स्वार्थ भाव की धूल उड़ाकर, प्रेम बढ़ाओ रे।
राष्ट्र धर्म का शुद्ध गुलाबी रंग जमाओ रे॥"

जन्माष्टमी का संदेश है—पशुओं के प्रति प्रेम बढ़ावें, जीवन में सादगी लायें, अन्याय और अत्याचार का नीति पूर्वक मुकाबला करें। आचार्य श्री के शब्दों में—

"कृष्ण कन्हैया जन्मे आज, भारत भार हटाने।
गुणियों का मान बढ़ाने, हिंसा का पाप घटाने॥"

लोक जीवन में शीतला सप्तमी और अक्षय तृतीया का बड़ा महत्त्व है। आचार्य श्री ने शीतला माता को दयामाता के रूप में देखा है—"हमारी दया-माता थाने मनाऊँ देवी शीतला।"

अक्षय तृतीय, अक्षय धर्मकरणी का प्रेरणादायी त्यौहार है। इस दिन वर्षीतप के पारणे होते हैं। जप-तप, दान, त्याग और आत्म-सुधार की प्रेरणा देते हुए आचार्य श्री कहते हैं—

"अक्षय बीज वृद्धि का कारण, त्यौंहि भाव विचार।
जप-तपकरणी खण्डित भाव में, नहीं करती उद्धार॥"

जैन परम्परा में चातुर्मास और पर्युषण पर्व का विशेष महत्त्व है। जीव-रक्षा और संयम-साधना की विशेष वृद्धि के लिए साधु-साध्वी वर्षाकाल में एक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जगह ही स्थिर रहते हैं। इस काल में धर्मकरणी की प्रेरणा देते हुए आचार्य श्री कहते हैं—

"जीव की जतना कर लीजे रे।
आयो वर्षावास धर्म की करणी कर लीजे रे।
दया धर्म को मूल समझ कर, समता रस पीजे रे।।"

पर्युषण पर्व सब पर्वों का राजा है। इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करते हुए अपने स्वभाव में स्थित हुआ जाता है। कृत पापों की आलोचना कर क्षमापना द्वारा आत्मशुद्धि की जाती है। विषय-कषाय घटाकर आत्मगुण विकसित किये जाते हैं। आत्मोल्लास के क्षणों में आचार्य श्री का कवि हृदय गा उठता है—

"यह पर्व पर्युषण आया, सब जग में आनन्द छाया रे।
तप-जप से कर्म खपावो, दे दान द्रव्य-फल पावो।
ममता त्यागी सुख पाया रे।।
समता से मन को जोड़ो, ममता का बन्धन तोड़ो,
हे सार ज्ञान का भाया रे।।"

इस प्रकार आचार्य श्री ने समाज में आत्म-बोध, समाज-बोध और पर्व-बोध जागृत करने की दृष्टि से जो काव्यमय उपदेश दिया है, वह आत्मस्पर्शी और प्रेरणास्पद है।

३. **चरित काव्य**—चरित काव्य सृजन की समृद्ध परम्परा रही है। रामायण और महाभारत दो ऐसे ग्रंथ रहे हैं, जिनको आधार बनाकर विविध चरित काव्य रचे गये हैं। जैन साहित्य में त्रिषष्टिश्लाका पुरुषों के जीवन वृत्त को आधार बनाकर विपुल परिमाण में चरित काव्य लिखे गये हैं। कथा के माध्यम से तत्त्वज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने की यह परम्परा आज तक चली आ रही है। कथा के कई रूप हैं...यथा–धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, लौकिक आदि। आचार्य श्री ने जिन चरित काव्यों की रचना की है, वे ऐतिहासिक और धार्मिक-आगमिक आधार लिए हुए हैं।

आचार्य श्री इतिहास को वर्तमान पीढ़ी के लिए अत्यधिक प्रेरक मानते हैं। इतिहास ऐसा दीपक है, जो भूले भटकों को सही रास्ता दिखाता है। आपके ही शब्दों में—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"युग प्रधान संतों की जीवन गाथा,
उनके अनुगामी को न्हायें माथा।
राग-अंध हो, भूला जन निज गुण को,
धर्म गाथा जागृत करती जन-मन को।
सुनो ध्यान से सत्य कथा हितकारी ।।"

और सचमुच आचार्य श्री ने २१० छन्दों में भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर सुधर्मा से लेकर आज तक के जैन आचार्यों का इतिहास "जैन आचार्य चरितावली" में निबद्ध कर दिया है। इसमें किसी एक आचार्य के चरित्र का आख्यान न होकर भगवान् महावीर के बाद होने वाले प्रमुख जैन आचार्यों की जीवन-झांकी प्रस्तुत की गई है। इस कृति के अन्त में आचार्य श्री ने धर्म और सम्प्रदाय पर विचार करते हुए कहा है कि दोनों का सम्बन्ध ऐसा है जैसा जीव और काया का। धर्म को धारण करने के लिए सम्प्रदाय रूप शरीर की आवश्यकता होती है। धर्म की हानि करने वाला सम्प्रदाय, सम्प्रदाय नहीं, अपितु वह तो घातक होने के कारण माया है। बिना संभाले जैसे वस्त्र पर मैल जम जाता है, वैसे ही सम्प्रदाय में भी परिमार्जन-चिन्तन नहीं होने से राग-द्वेषादि मैल का बढ़ जाना संभव है। पर मैल होने से वस्त्र फेंका नहीं जाता, अपितु साफ किया जाता है, वैसे ही सम्प्रदाय में आये विकारों का निरन्तर शोधन करते रहना श्रेयस्कर है—

"धर्म प्राण तो सम्प्रदाय काया है,
करे धर्म की हानि, वही माया है।
बिना संभाले मैल वस्त्र पर आवे,
सम्प्रदाय में भी रागाधिक छावे।
वाद हटाये, सम्प्रदाय सुखकारी ।।"

आवश्यकता इस बात की है कि दृष्टि राग को छोड़कर हम गुणों के भक्त बनें—"दृष्टि राग को छोड़, बनो गुणरागी।"

आचार्य श्री ने इतिहास जैसे नीरस विषय को राधेश्याम, लावणी, ख्याल, रास जैसी राग-रागिनियों में आबद्ध कर सरस बना दिया है। अपनी सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्पराओं को काव्य के धरातल पर उतार कर जन-जन तक पहुँचाने में यह 'चरितावली' सफल बन पड़ी है।

Jain Educationa International   For Personal and Private Use Only   www.jainelibrary.org

"यह जिन शासन की महिमा, जग में भारी,
लेकर शरणा तिरे अनन्त नर-नारी ।"

की टेर श्रोताओं के हृदय में बराबर गूँजती रहती है । इसकी रचना सं. २०२६ में डेह गाँव (नागौर) में की गई थी ।

आचार्य श्री ने "उत्तराध्ययन" और "अन्तगड़ सूत्र" के प्रेरक चरित्रों को लेकर भी कई चरित काव्यों की रचना की है यथा—भृगुपुरोहित धर्मकथा, प्रत्येक बुद्ध नमि राजऋषि, जम्बूकुमार चरित, मम्मण सेठ चरित, ढंढण मुनि चरित, विजय सेठ, विजयासेठानी चरित, जयघोष विजयघोष चरित, महाराजा उदायन चरित आदि । ये चरित काव्य बिविध राग-रागनियों में ढालबद्ध हैं । इनका मुख्य संदेश है—राग से विराग की ओर बढ़ना, विभाव से स्वभाव में आना, इन्द्रियजयता, आत्मानुशासन, समता, शांति और वीतरागता ।

४. **पद्यानुवाद**—आचार्य श्री आमगनिष्ठ विद्वान् व्याख्याता, कवि और साहित्यकार थे । आपका बरावर यह चिन्तन रहा कि समाज शास्त्रीय अध्ययन और स्वाध्याय की ओर प्रवृत्त हो, प्राकृत और संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के प्रति उसकी रुचि जगे । इसी उद्देश्य और भावना से आपने आत्मप्रेरणा जगाने वाले 'उत्तराध्ययन', 'दशवैकालिक' जैसे आगम ग्रन्थों का संपादन करते समय सहज, सरल भाषा शैली में उनके पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किये, ताकि जन-साधारण आगमिक गाथाओं में निहित भावों को सहजता से हृदयंगम कर सके । आपके मार्गदर्शन में पण्डित शशीकान्त शास्त्री द्वारा किये गये पद्यानुवाद सरल, स्पष्ट और बोधगम्य हैं । आपने 'तत्वार्थसूत्र' का भी पद्यानुवाद किया, जो अप्रकाशित है ।

आचार्य श्री का कवि रूप सहज-सरल है । गुरु गम्भीर पांडित्य से वह बोझिल नहीं है । भाषा में सारल्य और उपमानों में लोकजीवन की गंध है । जीबन में अज्ञान का अंधकार हटकर ज्ञान का प्रकाश प्रस्फुटित हो, जड़ता का स्थान चिन्मयता ले, उत्तेजना मिटे और संवेदना जगे, यही आपके काव्य का उद्देश्य है । "सच्ची सीख" कविता में आपने स्पष्ट कहा है जो हाथ दान नहीं दे सकते, वे निष्फल हैं, जो कान शास्त्र-श्रवण नहीं कर सकते वे व्यर्थ हैं, जो नेत्र मुनि-दर्शन नहीं कर सकते, वे निरर्थक हैं, जो पाँव धर्म स्थान में नहीं पहुँचते, उनका क्या औचित्य ? जो जिह्वा 'जिन' गुणगान नहीं कर सकती, उसकी क्या सार्थकता ?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"बिना दान के निष्फल कर हैं, शास्त्र श्रबण बिन कान।
व्यर्थ नेत्र मुनि दर्शन के बिन, तके पराया गात ।।
धर्म स्थान में पहुँच सके ना, व्यर्थ मिले वे पाँव।
इनके सकल करण जग में, है सत्संगति का दांव ।।
खाकर सरस पदार्थ बिगाड़े, बोल बिगाड़े बात।
वृथा मिली वह रसना, जिसने गाई गुन जिन गुणगात ।।"

आचार्य श्री ने अपने जीवन को ज्ञान, दर्शन, चारित्र और दान, शील, तप, भाव की आराधना में मनोयोगपूर्वक समर्पित कर सार्थक किया। संथारा-पूर्वक समाधिभाव में लीन हो आपने मृत्यु को मंगल महोत्सव में बदलकर सचमुच अपनी "संकल्प" कविता में व्यक्त किये हुए भावों को मूर्त रूप प्रदान किया है—

गुरुदेव चरण वन्दन करके, मैं नूतन वर्ष प्रवेश करूँ।
शम-संयम का साधन करके, स्थिर चित्त समाधि प्राप्त करूँ ।।१।।
तन मन इन्द्रिय के शुभ साधन, पग-पग इच्छित उपलब्ध करूँ।
एकत्व भाव में स्थिर होकर, रागादिक दोष को दूर करूँ ।।२।।
हो चित्त समाधि तन मन से, परिवार समाधि से विचरूँ।
अवशेष क्षणों को शासनहित, अर्पण कर जीवन सफल करूँ ।।३।।
निन्दा विकथा से दूर रहूँ, निज गुण में सहजे रमण करूँ।
गुरुवर वह शक्ति प्रदान करो, भवजल से नैया पार करूँ ।।४।।
शमदम संयम से प्रीति करूँ, जिन आज्ञा में अनुरक्ति करूँ।
परगुण से प्रीति दूर करूँ, "गजुमुनि" यो आंतर भाव धरूँ ।।५।।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आपने कविता को विचार तक सीमित नहीं रखा, उसे आचार में ढाला है। यही आपकी महानता है।

—अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org